International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(5): 321-325

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(5): 321-325
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 14-07-2021
Accepted: 18-08-2021

डॉ. देवराज
सहायक आचार्य, संस्कृत इक्डोल,हि.प्र.विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारतः

कमलेश कुमारी
शोधार्थी, संस्कृत-विभाग, हि.प्र.विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारतः

Corresponding Author:
डॉ. देवराज
सहायक आचार्य, संस्कृत इक्डोल,हि.प्र.विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारतः

सौरपुराण के परिप्रेक्ष्य में आश्रम व्यवस्था

डॉ. देवराज, कमलेश कुमारी

प्रस्तावना

हिन्दू विचारकों ने मानव-जीवन को समग्रतापूर्वक व्यवस्थित रूप प्रदान करने तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए आश्रम-व्यवस्था का विधान किया था। आश्रम व्यवस्था भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर कही जाती है। आश्रम व्यवस्था ऐसी विशिष्ट जीवन पद्धति है जो मानव को जीवन के अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति के लिए अग्रसर करती है।

आश्रम शब्द आङ् उपसर्ग पूर्वक श्रम् धातु से घञ् प्रत्यय करके निष्पन्न होता है जिसका उपयोग विभिन्न अर्थों में दृष्टिगोचर होता है- कुटिया, झोपड़ी, सन्यासियों का आवास या कक्ष, ब्राह्मणों के धार्मिक जीवन की चार अवस्थाएँ, विद्यालय, महाविद्यालय, प्रशिक्षक। [1] आश्रम व्यवस्था का आरम्भ वैदिक-काल में हो चुका था। बौधायन धर्मसूत्र में चार आश्रमों का उल्लेख मिलता है - ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक अर्थात् संन्यासी को आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत रखा गया है। [2] पुराणों में भी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों को स्वीकार किया गया है। श्रीमद्भागवतपुराण में कहा गया है कि उस विराट् पुरुष की जंघा से गृहस्थ, हृदय से ब्रह्मचर्य, वक्ष-स्थल से वानप्रस्थ तथा मस्तक से संन्यास आश्रम की उत्पत्ति हुई-

गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम।
वक्षः स्थानाद् वने वासोन्यासः शीर्षाणि संस्थिताः।। [3]

धर्मशास्त्र के इतिहास के अनुसार चारों आश्रमों में ब्रह्मचर्य आश्रम विद्याध्ययन तथा धर्म की प्राप्ति का समय है। गृहस्थाश्रम धर्मार्थ और काम की प्राप्ति का काल है। वानप्रस्थ धर्म की प्राप्ति एवं मोक्ष के लिये तैयारी का समय है तथा संन्यास पूर्णरूप से मोक्ष प्राप्ति का काल है। [4]

सौरपुराण में भी चार प्रकार के आश्रमों का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास इन चारों का उल्लेख किया गया है।

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
चत्वारश्चाऽऽश्रमास्तेषां पंचमो नोपपद्यते।। [5]

अब इन चारों आश्रमों का सविस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं।

ब्रह्मचर्य आश्रम

भारतीय संस्कृति ने सम्पूर्ण जीवन को सौ वर्ष का मानकर 25-25 वर्षों के चार भागों में बाँट दिया है। उसमें प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम के नाम से जाना जाता है। ब्रह्मचर्य आश्रम का सीधा सम्बन्ध ब्रह्मचारी से है। ब्रह्मचर्य शब्द दो शब्दों के मेल से बना है - ब्रह्मचर्य। ब्रह्म शब्द का अर्थ है वेद का ग्रहण करना तथा चर्य शब्द का अर्थ है - आचरण करना। [6]

ब्रह्मचारी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है-

ब्रह्मचारी चरति वेदिद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम्।
तेन जायामन्वविन्दद्बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः।। [7]

अथर्ववेद में ब्रह्मचर्य आश्रम के सन्दर्भ में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य के माध्यम से ही देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी तथा ब्रह्मचारी में निहित ब्रह्मचर्य शक्ति सम्पूर्ण विश्व की रक्षा करती है-

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभात्।। [8]

मनुस्मृति में भी ब्रह्मचर्य के धर्म को बतलाते हुए कहा गया है कि ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम में गुरु के समीप रहकर वेदों का अध्ययन करने की अवधि तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये-

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्य गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा गृहणान्तिकमेव वा।। [9]

महाभारत में ब्रह्मचर्य आश्रम के विषय में वर्णन मिलता है कि ब्रह्मचारी के लिए भैक्षाचर्या परम धर्म है तथा नित्य यज्ञोपवीत धारण करना भी ब्रह्मचर्य आश्रम का धर्म है। [10]
अग्निपुराण में ब्रह्मचारी के धर्मों का वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि ब्रह्मचारी के लिए मदिरापान, माँस, लोगों के साथ गाने तथा नृत्यादि करने का निषेध है-
मधुमांसं जनैः सार्धं गीतं नृत्यं च वै त्यजेत्।। [11]
सौरपुराण में ब्रह्मचर्य धर्म के सन्दर्भ में कहा गया है कि ब्रह्मचारी को दण्ड, मृगचर्म तथा मेखला धारण करके मुण्डित मुण्ड, शिखाधारी अथवा जटाधारी होना चाहिये-

ब्रह्मचारी भवेद्दण्डी कृष्णाजिनधरस्तथा।
मेखली च तथा मुण्डी शिखी वा यदि वा जटी।। [12]

ब्रह्मचारी को भिक्षाहार से ही अपना जीवनयापन करना चाहिए तथा सांय और प्रातःकाल में अग्निकार्य करना इत्यादि ब्रह्मचर्य के धर्म बताये गये हैं-

भिक्षाहारेण सततं वर्तनं तस्य सुव्रताः।
अग्निकार्यं तथा कुर्यात्सायं प्रातर्यथाविधि।। [13]

गृहस्थ आश्रम

जीवनयापन एवं लोककल्याण की शिक्षा लेकर ब्रह्मचारी के लोक सेवा क्षेत्र में उतरने को गृहस्थ आश्रम कहा जाता है। यह आश्रम जीवन का दूसरा पर्व है। गृहस्थाश्रम व्यक्ति के जीवन का वह भाग है जिस पर स्वयं उसकी, उसके परिवार, समाज और राष्ट्र की उन्नति निर्भर करती है। गृहस्थ शब्द गृह+स्था+क (सुपि स्थ इति क) करके निष्पन्न होता है तथा गार्हस्थाश्रम धर्म से तात्पर्य उन कर्त्तव्य-कर्मों से हैं जिनको व्यक्ति विवाह के पश्चात् पत्नी सहित गृह में स्थित होकर सम्पन्न करता है। [14]
ऋग्वेद में सन्तानोत्पत्ति करना गृहस्थ का प्रमुख धर्म माना है। इसलिए नवविवाहिता कन्या को सुपुत्रों की माता बनने का आशीर्वाद दिया गया है। [15] गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों में ज्येष्ठ माना है। गृहस्थ ही अन्य तीनों आश्रमों का पालन करता है तथा जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्र में मिलती है उसी प्रकार अन्य सभी आश्रम भी गृहस्थ पर आश्रित होते हैं-

नदी नदाः सर्वे समुद्रे यान्ति संस्थितिम्।
एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्। [16]

महाभारत में गृहस्थी के धर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है कि अतिथि सत्कार करना गृहस्थी का परम धर्म है क्योंकि जिस गृहस्थ के घर आए हुए अतिथि पूजित होकर जाते हैं, उसके लिए उससे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है-

अतिथिः पूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति।
नान्यस्तस्मात् परो धर्म इति प्राहुर्मनीषिणः।। [17]

पुराणों में भी गृहस्थ आश्रम के विषय में विशद वर्णन दृष्टिगोचर होता है। भागवतपुराण में गृहस्थी का वर्णन करते हुए कहा गया है कि गृहस्थ पुरुष को सदा धर्म, अर्थ और काम में लगे रहना चाहिए तथा गृहस्थी को जो कुछ प्रारब्ध से मिल जाए, उसी में अपना निर्वाह करना चाहिए।

त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि।
यथादेशं यथाकालं यावच्छैवोपपातिम्।। [18]

नरसिंहपुराण में बताया गया है कि एक गृहस्थ पुरुष को वेदमाता गायत्री का जाप करते हुए जपयज्ञ करना चाहिए-

जपयज्ञ तत्र कुर्याद्गायत्री वेदमातरम्।
विविधो जपयज्ञ स्यातस्य भेद निबोधत।। 19

सौरपुराण के अनुसार एक गृहस्थ पुरुष को गृहकर्म तथा सन्ध्योपासना करनी चाहिए तथा श्रेष्ठ व्यक्ति के साथ ही मित्रता करनी चाहिए और सदैव धनी का आश्रय लेना चाहिए-

कुर्याद्गृह्याणि कर्माणि संध्योपासनमेव च।
सख्यं सामाधिकैः कुर्यादपेयादीश्वरं सदा।। 20

गृहस्थ पुरुष को शिव की भक्ति करनी चाहिये तथा श्राद्ध इत्यादि कर्मों को करना चाहिये और गृहस्थी को दान देने में अग्रसर रहना चाहिए। एक गृहस्थ पुरुष का क्षमाशील तथा दयालु होना आवश्यक है, क्योंकि घर में केवल रहने मात्र से कोई गृहस्थी नहीं बन जाता-

सावित्रीजाप्यनिरतः शिवभक्तिपरायणः।
श्राद्धकृद्दाननिरतः क्षमायुक्तो दयालुकः।।
गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहण गृही भवेत्। 21

अतः गृहस्थाश्रम ही सभी धर्मों का आधार है और चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम धन्य हैं।

वानप्रस्थ आश्रम

वानप्रस्थ आश्रम से अभिप्राय गृहस्थ के पूर्ण होने पर वन का प्रस्थान करना है। जीवन का यह तीसरा पर्व भारतीय व्यवस्था की एक अद्भुत कल्पना है। वानप्रस्थ शब्द की व्युत्पत्ति वाने वनसमूहे प्रतिष्ठते+स्था+क इस प्रकार से बतायी गयी है जिसका अर्थ है कि अपने धार्मिक जीवन के तीसरे आश्रम के ब्राह्मण, वैरागी तथा साधु इत्यादि का प्रविष्ट होना। 22

मनुस्मृति में वानप्रस्थी के धर्म को बतलाते हुए कहा गया है कि वानप्रस्थ पुरुष को जब यह आभास हो जाए कि उसकी त्वचा ढीली पड़ गई है तथा उसके बाल सफेद हो गए हैं और उसके पुत्र को भी सन्तान प्राप्ति हो गई है तो उसे अपनी इन्द्रियों को वश में करके वानप्रस्थाश्रम को स्वीकार करके वन की ओर प्रस्थान करना चाहिए-

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नात्को द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः।।
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वालीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदाऽऽरण्यं समाश्रयेत्।। 23

वानप्रस्थी मनुष्य को वन में रहकर पत्ते, मूलकन्द तथा पके हुए फलों का आहार करते हुए जीवनयापन करना चाहिए-

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयत्सदा।
कालपक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमते स्थितः।। 24

रामायण में भी वानप्रस्थ पुरुष का वर्णन करते हुए कहा गया है कि एक वानप्रस्थी को संयमी होना चाहिए तथा त्याग का जीवन जीना चाहिए। उसे पलंग का त्याग कर कुश और पत्तों की शय्या पर शयन करना चाहिए जिस प्रकार राम ने लक्ष्मण के द्वारा बनाई गई कुश और पत्तों की शय्या पर शयन किया था। 25

अग्निपुराण में वानप्रस्थाश्रम धर्म के सन्दर्भ में कहा गया है कि एक वानप्रस्थी को जटा धारण करनी चाहिए, अग्निहोत्र करना चाहिए, वन में निवास करते हुए पृथ्वी पर शयन करना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए देवता एवं अतिथि का पूजन करना चाहिए, यही एक वानप्रस्थ पुरुष का धर्म होता है-

जटित्वमग्निहोत्रित्वं भूशय्याऽजिनधारणम्।
वनेवासः पयोमूलनीवारफलवृत्तिता।
प्रतिग्रहनिवृतिश्च त्रिःस्नानं ब्रह्मचारिता।। 26

सौरपुराण में वानप्रस्थ पुरुष के कर्त्तव्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वानप्रस्थी को केवल मात्र आठ ग्रास भोजन ही करना चाहिए तथा चीरवस्त्र धारण, जटाधारण, त्रैकालिक स्नान तथा स्वाध्याय ये वानप्रस्थाश्रमी के मुख्य कर्त्तव्य हैं-

अष्टौ ग्रासांश्च भुञ्जीत चीरवासा भवेज्जटी।
भवेत्त्रिषवणस्नायी नित्यं स्वाध्यायतत्परः।। 27

जो वानप्रस्थ तपस्वी प्रतिदिन शिव की पूजा करता है तथा उनका ध्यान करता है और नित्य वानप्रस्थाश्रम का पालन करता है, उसे परमगति मिलती है। मृत्यु के उपरान्त उसे नित्य पद प्राप्त हो जाता है-

शिवपूजारतो नित्यं शिवध्यानपरायणः।
एवं यो वर्तते नित्यं वानप्रस्थाश्रमे द्विजः।।

परां गतिमवाप्नोति देहान्ते शाश्वतं पदम्।। 28

अतः वानप्रस्थ पुरुष जीवन मुक्ति की शेष बाधाओं को तथा जीवन के शेष कर्त्तव्यों को समाप्त करके संन्यास की स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त करता है।

संन्यास आश्रम

तृतीय आश्रम व्यवस्था वानप्रस्थ के बाद चतुर्थ को संन्यास आश्रम के नाम से जाना जाता है। यह जीवन का अन्तिम आश्रम है। संस्कृत-हिन्दी कोशकार ने संन्यास शब्द की व्युत्पत्ति सम्+नि+अस्+घ प्रत्यय से बताई है। जिसका अर्थ त्याग करना तथा सांसारिक विषय-वासनाओं का परित्याग करना है। 29 स्मृतिकार के अनुसार जो ब्राह्मण वेदों का अध्ययन, पुत्र उत्पत्ति तथा यज्ञ-अनुष्ठान नहीं करता लेकिन संन्यास आश्रम में प्रविष्ट हो जाता है, वह मनुष्य अधोगति को प्राप्त होता है-

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः।। 30

महाभारत में संन्यासी के सम्बन्ध में वर्णन मिलता है कि संन्यासी पुरुष को अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य, सरलता इत्यादि व्रतों का सदैव पालन करना चाहिए-

अहिंसा ब्रह्मचर्यं च सत्यमार्जवमेव च।।
अक्रोधश्चानसूया च दमो नित्यमपैशुनम्।
अष्टस्वेतेषु युक्तः स्याद् व्रतषु नियतेन्द्रियः।। 31

पुराणों में सन्यासी के लिए यति शब्द का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है। भागवतपुराण में यति धर्म के सन्दर्भ में उल्लेख मिलता है कि संन्यासी को सदैव दण्डादि चिन्ह तथा कमण्डलु को धारण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु अपने पास नहीं रखनी चाहिए। संन्यासी पुरुष को किसी का भी आश्रय नहीं लेना चाहिए। सभी के प्रति सद्भाव रखना चाहिए और नारायण परायण होना चाहिए-

त्यक्तं न दण्डलिङ्गादेरन्यत्किंचिदनापदि।
एक एव चरेद्भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः।।
सर्व भूतसुहच्छान्तौ नारायणः परायणः।। 32

सौरपुराण में संन्यासाश्रम धर्म के विषय में बताया गया है कि जब सभी वस्तुओं के प्रति देह में वैराग्य का जन्म होने लगता है तो व्यक्ति को संन्यास ले लेना चाहिए क्योंकि यदि वैराग्य न हो तो संन्यास लेने का कोई औचित्य नहीं रह जाता तथा बिना वैराग्य के संन्यास लेने वाला व्यक्ति पतित हो जाता है-

यदा मनसि वैराग्यं जायते सर्ववस्तुषु।
तदा च संन्यसेद्विद्वानन्यथा पतितो भवेत्।। 33

एक संन्यासी व्यक्ति को अपने नित्य नियमों के पश्चात् अर्थात् स्नान तथा सम्पूर्ण अङ्गों में भस्म लेपन करने के पश्चात् नित्य पूजा-पाठ इत्यादि करना चाहिए-

भवेत्त्रिषणवणस्नायी भस्मोद्धूलितविग्रहः।।
प्रणवं प्रजपेन्नित्यं मोक्षशास्त्रस्य चिन्तकः।
वेदान्तांश्च पठेन्नित्यं तेषामर्थांश्च चिन्तयेत्।। 34

जो संन्यासी यत्नपूर्वक चारों आश्रमों का पालन करता है, उससे शिव प्रसन्न हो जाते हैं तथा वह संन्यास मात्र से ही पापों से मुक्त हो जाता है-

इति सर्वमशेषेण चातुराश्रम्यमीरितम्।
योऽनुतिष्ठेत्प्रयत्नेन तस्य शम्भुः प्रसीदति।। 35

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में आश्रम व्यवस्था के जो विशेष नियम एवं धर्म बनाए गए थे, वर्तमान युग में किसी मनुष्य के द्वारा भी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास के नियमों का पूर्ण रूप से पालन नहीं होता है क्योकि मनुष्य इन आश्रम व्यवस्था के धर्मों को छोड़कर अधर्म के मार्ग में प्रवृत हो गए हैं।

सन्दर्भ-सूची

1. संस्कृत हिन्दी कोश, पृष्ठ, 165
2. ब्रह्मचारी, गृहस्थो, वानप्रस्थः परिव्राजक इति। बोधायन धर्मसूत्र, 2.6.11.14
3. श्रीमद्भागवतपुराण,11.17.14
4. धर्मशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ, 266
5. सौरपुराण, 17.6
6. संस्कृत हिन्दी कोश, पृष्ठ, 375
7. ऋग्वेद, 10.109.5
8. अथर्ववेद, 11.15.19
9. मनुस्मृति, 3.1

10. भैक्षाचर्या परोधर्मो नित्ययज्ञोपवीतिता। महाभारत, 141.35
11. अग्निपुराण, 156.14
12. सौरपुराण, 17.8
13. वही, 17.9
14. हलायुध कोश, पृष्ठ, 260
15. सुपुत्रा सुभगासति। ऋग्वेद, 10.85.25
16. वसिष्ठ धर्मसूत्र, 8.16
17. महाभारत, 2.70
18. भागवतपुराण, 7.12.10
19. नरसिंहपुराण, 66.78-79
20. सौरपुराण, 17.51
21. वही,
22. संस्कृत हिन्दी कोश, पृष्ठ, 917
23. मनुस्मृति, 6.1-2
24. वही, 6.21
25. आस्तृतं कृशपर्णाद्यैः शयनं लक्ष्मणेन हि।। अध्यात्मरामायण, 2.5.71
26. अग्निपुराण, 160.1-2
27. सौरपुराण, 20.4
28. वही, 20.9-10
29. संस्कृत-हिन्दी कोश, पृष्ठ, 170
30. मनुस्मृति, 6.37
31. महाभारत, 46.29-30
32. भागवतपुराण, 7.12.2-3
33. सौरपुराण, 20.10-11
34. वही, 20.15-16
35. वही, 20.22 4
36. अग्निपुरण : सम्पादक : पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक : संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब बरेली, संस्करण : प्रथम वर्ष : 1971
37. अथर्ववेद : सम्पादक सातवलेकर दामोदर, प्रकाशक : बसन्त श्रीपाद सातवलेकर, मुद्रक : चमन आफसेट प्रिंटर्स, नई दिल्ली
38. ऋग्वेद : भाष्यकार : भूषण पद्म, लेखक: सातवलेकर दामोदर, प्रकाशक : वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, म्रदक : चमन आफसेट प्रिंटर्स, नई दिल्ली
39. नरसिंहपुराण : प्रणेता : व्यासवेद, प्रकाशक : गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण : ग्यारहवाँ, वि0सं0 2070
40. बोधायनधर्मसूत्र : व्याख्याकार : डॉ0 उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी-1, द्वितीय संस्करण, 1972
41. भागवतपुराण : लेखक : व्यासदेव, प्रकाशक : खेमराज श्रीकृष्णदास, सम्वत् 2043 वर्ष : 1986
42. मनुस्मृति: लेखक : नेने गोपालशास्त्री, व्याख्याकार : हरगोविन्द शास्त्री, प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, संस्करण सप्तम, वि0सं0 2060
43. महाभारत : लेखक : व्यास, अनुवादक : रामनारायणदत्त शास्त्री, प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण: द्वितीय, वि0सं0 2023
44. रामायण : लेखक : वाल्मीकि, प्रकाशक : परिमल पब्लिकेशनस 33/17 शक्तिनगर, दिल्ली-110007, संस्करण 1983
45. वसिष्ठ धर्मसूत्र : टीकाकार : राम राजा, प्रकाशक : बाम्बे मशीन प्रेस लाहौर, प्रथम संस्करण, 1905
46. सौरपुराण : लेखक : व्यास, टीकाकार : श्री एस0एन0 खण्डेलवाल, प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 38 यू0ए0 बंगलो रोड, जवाहर नगर पो0बा0नं0 2113, दिल्ली-110007
47. धर्मशास्त्र का इतिहास : पी0वी0काणे, अनु0-अर्जुन चैबे काश्यप, हिन्दी समिति सूचना विभाग उत्तर प्रदेश लखनऊ, संस्करण, 1966
48. संस्कृत-हिन्दी कोश : लेखक : आप्टे वामन शिवराम, प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण, 1966
49. हलायुध कोश : लेखक : जोशी जयशङ्कर, प्रकाशक : हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ, प्रथम संस्करण 1957